श्रीसमयसार गाथा १४। पहले पाँच बोल लिये हैं। विस्तार अभी आयेगा कि यह आत्मा बद्धस्पृष्ट — एक समय की पर्याय में राग का सम्बन्ध दिखता है और पर्याय में अनेकता — षट्गुण हानि-वृद्धि आदि पर्याय में दिखती है और दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद भी पर्यायदृष्टि से दिखता है परन्तु यह सर्व अभूतार्थ है, यह कायम रहने की चीज नहीं है। समझ में आया? शिष्य ने प्रश्न किया है कि जैसा ऊपर कहा... आपने आत्मा को अबद्धस्पृष्ट अनन्य, सामान्यस्वरूप कहा, जिसमें गुण-भेद की विशेषता भी नहीं, जिसमें पर्याय नहीं और अकेला चैतन्यद्रव्य जो ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसे आपने आत्मा कहा तो यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव है न? पर्याय में राग आदि का और पर्याय का भेद है न? तो जैसा ऊपर कहा वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है। आहाहा! ऐसी चीज है और पर्याय में राग आदि है, भेद है, एक समय की बात है, हों! तो ऐसा होने पर आत्मा की अनुभूति कैसे होती है? आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप का अनुभव, आनन्द का वेदन.... आहाहा! सम्यग्दर्शन में अनुभूति होती है। सम्यग्दर्शन में त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप को अनुसरण करके अनुभूति होती है, उसमें सम्यग्दर्शन की प्रतीति भी उसी में होती है और उसमें — अनुभूति में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर पूर्णानन्दस्वरूप सन्मुख के झुकाव से पर्याय में अनुभव-सम्यग्दर्शन और आनन्द का स्वाद आता है, वह कैसे? बद्ध आदि है न? एक समय की रागादि पर्याय के सम्बन्ध में है न? और गुणभेद है न? सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

तो आचार्य कहते हैं कि **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ है....** आहाहा! एक

समय की अवस्था में राग और राग का सम्बन्ध तथा भेद — एक समय की अवस्था, वह तो अभूतार्थ है, कायम रहनेवाली चीज नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह कायम रहने की चीज नहीं है, वह अभूतार्थ है; अतः उससे रहित आत्मा का अनुभव हो सकता है। सूक्ष्म बात है भाई! प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने की बात है। यह १४ वीं गाथा सम्यग्दर्शन की है। १५ वीं गाथा सम्यग्ज्ञान की है। आहाहा! और १६ वीं (गाथा) दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की है। यहाँ दर्शन की — सम्यग्दर्शन की बात है, तो शिष्य ने प्रश्न किया कि आपने कहा, वह मेरे लक्ष्य में आया। ऊपर कहा हुआ, ऐसा शब्द आया न? कि आत्मा अबद्धस्पृष्ट है, अनन्य है, अभेद है, पर्याय की अनेकता से भिन्न है... आहाहा! ऐसा आप कहते हैं, वह ख्याल में आया, परन्तु वे बद्धस्पृष्ट आदि भाव तो है; अतः वैसे आत्मा का अनुभव — सम्यग्दर्शन-अनुभूति कैसे होती है? आहाहा! तो कहते हैं कि यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव अभूतार्थ हैं। कायम रहने की चीज नहीं है। आहाहा! एक समय की पर्याय का-राग का सम्बन्ध है, वह कायम रहने की चीज नहीं है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जो भेद करते हैं, वह भी पर्यायदृष्टि से भेद करते हैं, वह कायम रहने की चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए वह अनुभूति हो सकती है।** है न, है?

इसलिए वह अनुभूति हो सकती है। आहाहा! तो क्या कहा? कि पर्याय में जो दया, दान, व्रत आदि का विकल्प-व्यवहार है, उसका सम्बन्ध एक समय का सम्बन्ध है; वह कोई कायम रहने की चीज नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इस कारण अभूतार्थ अर्थात् कायम रहने की चीज नहीं है; इस कारण उससे दृष्टि छोड़कर त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव-सम्यग्दर्शन हो सकता है। आहाहा! ऐसी बात है। यह लोग कहते हैं न कि व्यवहार, व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति होती है... सब मिथ्यादृष्टि हैं। सूक्ष्म बात है प्रभु!

व्यवहार तो राग है, राग अभूतार्थ है; इस भूतार्थ की प्राप्ति में वह अभूतार्थ कारण कैसे होता है? पण्डितजी! तुम्हें तो पता है न तुम्हें तो... उसने तो टीका की है। आहाहा! जैनतत्त्व मीमांसा बहुत बढ़िया बनाया है। आहाहा! यह कोई पण्डिताई की चीज नहीं है। पण्डिताई — क्षयोपशम बहुत है। ग्यारह अंग का ऐसा और वैसा.... यह कोई

पण्डिताई की चीज नहीं है। यह तो अन्तर पण्डिताई की चीज है। सम्यग्दृष्टि को पण्डित कहते हैं। क्या ?

श्रोता : अन्दर की पण्डिताई या बाहर की पण्डिताई.... रही तो पण्डिताई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाहर की पण्डिताई भी पण्डित में रह गयी, आत्मा में नहीं आयी। ठीक पूछते हैं, पूछते तो हैं न। वैसे तो प्रभु ग्यारह अंग अनन्त बार (पढ़ा है) समझ में आया ?

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग ल्यौ,
वनवास ल्यौ मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लाग्य दियौ।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठ जोग प्रयोग सुतार भयो,
(जप भेद जपे तप त्यौं ही तपे, उर से ही उदासी लहि सब पे)
सब शास्त्रन के नय धारिये मत मण्डन खण्डन भेद लिये
यह साधन बार अनन्त कियौ, तदपि कछु हाथ हजू न परयो।

श्रीमद् राजचन्द्र थे तो गुजराती, सम्यग्दृष्टि थे, आत्मज्ञानी हुए थे। बाद में यह उन्होंने हिन्दी में बनाया। थे तो गुजराती वणिक। समझ में आया ? प्रभु! यम-नियम — यम अर्थात् पंच महाव्रत, नियम अर्थात् अनेक प्रकार के अभिग्रह। यम, नियम, संयम, इन्द्रिय का दमन किया। आजीवन बाल ब्रह्मचारी रहा। आहाहा! ऐसी क्रिया, प्रभु! अनन्त बार की है। यम, नियम, संयम आप कियौ, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लियौ.... जिसे एक टुकड़ा भी वस्त्र का न रहे ऐसा त्याग किया.... त्याग, वैराग्य उदास हो गया पर से परन्तु वह चीज-अपनी चीज क्या है, उस ओर की दृष्टि नहीं की। आहाहा! यह त्याग वैराग्य अथाग लिया, मन पौन निरोध — श्वाच्छोस्वास का निरोध करके, मानो मैं आत्मध्यान करता हूँ — ऐसा भी अनन्त बार किया। वह कोई चीज नहीं है। वह साधन बार अनन्त कियो, अब (क्यों न) विचारत है। (मन से कछु और रहा उन साधन से) मन से, कि उन साधन से भिन्न कोई बात है, वह साधन-फाधन है नहीं। आहाहा। यह यहाँ कहते हैं कि पर्याय में जो पाँच भाव दिखते हैं, वे कायम टिकने की चीज नहीं है। इसलिए उनसे दृष्टि उठाकर, पर्यायदृष्टि छोड़कर, व्यवहारदृष्टि उठाकर, त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु

अतीन्द्रिय आनन्द का दल सामान्य जो ध्रुव है, उस पर दृष्टि लगा दे, आहाहा! तो तुझे अनुभूति होगी, आनन्द का स्वाद आयेगा। आहाहा!

सम्यग्दर्शन होते ही, जितनी संख्या में आत्मा में गुण हैं... तीन काल के समय से ही अनन्त गुने आकाश के प्रदेश हैं... आकाश के प्रदेश अपार... अपार... अपार... अपार... अपार... हैं। उनसे अनन्तगुने एक आत्मा में गुण हैं, आकाश के प्रदेश की संख्या की अपेक्षा जिसका कहीं पार नहीं है, अन्त नहीं, अन्त नहीं, अन्त नहीं, अन्त नहीं... इसका — आकाश का जो प्रदेश है, उससे अनन्तगुने तो एक जीव में गुण हैं। आहाहा! ऐसे गुण होने पर भी, गुण और गुणी का भेद भी नाशवान है, आहाहा! अभूतार्थ है। सूक्ष्म बात है प्रभु! अभी तो बात बहुत गड़बड़ चढ़ गयी है। अभी तो पण्डित लोग और सब ऐसा व्यवहार करते — (करते) निश्चय प्राप्त होता है (ऐसा मानते हैं परन्तु) भाई! ऐसा नहीं है प्रभु! अन्तर में शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, अनन्त गुण का पिण्ड (है), उसका अनुभव करने में पर की कोई अपेक्षा नहीं है, व्यवहार और राग की अपेक्षा नहीं है — ऐसा सम्यग्दर्शन पर की अपेक्षा बिना स्व के आश्रय से उत्पन्न होता है। समझ में आया? यह बात है भगवान! क्या कहें? आहाहा!

यह कहते हैं **अनुभूति हो सकती है...** आहाहा! एक समय की पर्याय है, अभूतार्थ है, कायम टिकने की चीज नहीं। व्यवहाररत्नत्रय है, वह भी एक समय की विकृत चीज है, वह कायम टिकने की-रहने की चीज नहीं है। आहाहा! तो कायम टिकने की चीज है भूतार्थ! उस अभूतार्थ से दृष्टि उठाकर भूतार्थ त्रिकाली ज्ञायक में दृष्टि लगा दे, तुझे आनन्द का स्वाद आयेगा, तुझे सम्यग्दर्शन होगा और जितनी संख्या में गुण है, उन सब गुणों की आंशिक व्यक्तता वेदन में आयेगी। जितनी संख्या में गुण हैं — अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त.... अनन्त.... (हैं) जिसमें अनन्त के गुण की संख्या में यह अन्तिम-आखिर का है — ऐसा कोई अन्त नहीं है। आहाहा! ये सब गुण की तरफ दृष्टि देने से-पर्यायदृष्टि को छोड़कर.... आहाहा! अन्तर्मुख दृष्टि करने से उसमें कोई पर की अपेक्षा है ही नहीं। व्यवहार से भिन्न पड़ना है तो पर-व्यवहार की अपेक्षा रखकर अन्दर जा सके — ऐसी चीज है नहीं, वस्तु ऐसी है नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

अनुभूति हो सकती है.... (बद्धस्पृष्ट आदि) वह चीज अभूतार्थ है। एक समय की पर्याय, भेद है। आहा...हा... ! अरे ! राग आदि भी एक समय की विकृत अवस्था है, वह कायम टिकने की चीज नहीं है; इसलिए उससे दृष्टि उठा दे। आहाहा ! और भूतार्थ, एक समय में त्रिकाली ज्ञायकभाव अनन्त गुण का एकरूप (है), उसकी दृष्टि करने से ज्ञान की-आनन्द की-स्वभाव की अनुभूति होगी। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! यह सत्य दर्शन है। सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन — सत्य अर्थात् पूर्णानन्द सत्यार्थ, भूतार्थ, भूतार्थ भगवान, सत्यार्थ साहेब प्रभु स्वयं अनन्त गुण का साहेब, उसकी दृष्टि-अनुभव करने से... आहाहा ! जितनी संख्या में गुण है, उन सबका पर्याय में एक अंश व्यक्त का अनुभव हुआ। आहाहा ! ऐसी बात है !

यह तो निवृत्ति लेकर यह काम करे तब हो, बाकी तो प्रवृत्ति कर-करके अनन्त काल से मर गया है।

श्रोता : मर कहाँ गया है, जीवित तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, क्या ? अरे ! जीवित तो उसे कहते हैं प्रभु ! ज्ञायक-जीवत्वशक्ति है न उसमें ? जीवत्वशक्ति में जीवन है। वह समयसार की दूसरी गाथा में लिया है कि **जीवो चरित्तंदंसणणाणट्ठिदो** तो इन 'जीवो' में से जीवत्वशक्ति निकाली है। अमृतचन्द्राचार्य ने सैंतालीस शक्तियाँ / गुण निकाले हैं। हैं तो अनन्त परन्तु कितने कह सकते हैं ? अत: सैंतालीस लिये हैं। उनमें जीवत्वशक्ति में अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द और सत्ता, इन भावप्राण से आत्मा त्रिकाल में जीता है। ऐसे जीवत्व से जीनेवाला प्रभु (है)। उसे मैं राग से जीता हूँ और पुण्य से मुझे लाभ होगा, यह उसने चैतन्य के जीवन का नाश कर दिया है। उसने चैतन्य के-पूर्णानन्द के नाथ का अनादर करके हिंसा की है। युगलजी ! सूक्ष्म बात है। आहाहा !

हिंसा का अर्थ ? जैसा अस्तित्व है, इतना अस्तित्व न मानना और दूसरे प्रकार से मानना, वह स्वभाव नहीं है — ऐसा (मानना), वह हिंसा है। आहाहा ! यह क्या कहा ? भगवान पूर्णानन्द अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द शुद्ध चैतन्यघन से जो टिक रहा है, जीवित है, टिक रहा है, उसे राग से लाभ होगा, पुण्य से लाभ होगा, व्यवहार से होगा (— ऐसा

माननेवाले ने) उस वस्तु की हिंसा कर दी है। जो स्वतन्त्र वस्तु है, उसे पर से लाभ होगा, यह वस्तु का जीवत्व का जीवन टिकता है, टिक रहा है, उसको नहीं है — ऐसा कह दिया। दूसरी भाषा में कहें तो जो रागादि-विकल्प आता है, उसका जिसे प्रेम है, उसे त्रिकाली ज्ञायक के प्रति द्वेष है, क्रोध है। समझ में आया? जिसे व्यवहार, पर्याय के प्रति प्रेम है (उसे आत्मा के प्रति द्वेष है)। आहाहा! गजब बात है बापू! यह प्रभु का मार्ग अलौकिक है। आहाहा!

एक समय की पर्याय और दया, दान, व्रत आदि के विकल्प का जिसे प्रेम है, उसे भगवान आत्मा के प्रति क्रोध है और द्वेष है, क्योंकि द्वेष के दो भाग — क्रोध और मान; राग के दो भाग — माया और लोभ; अतः जिसे आत्मा के प्रति अभाव है और राग के प्रति का भाव है, उसका स्वभाव के प्रति द्वेष और क्रोध है। आहाहा!

जिसने राग के प्रति मित्रता बाँधी है, उसने स्वभाव के प्रति की मैत्री को छोड़ दिया है। आहाहा! यह छोटी उम्र के लड़के हम खेलते थे तब कहते थे, कट्टी — ऐसा कहते कुछ ऐसा, पता है न? सब मित्र हों और मित्रों के साथ मनमुटाव करना हो (तो कहते हैं) कट्टी, तेरे साथ कट्टी जा! ऐसा करते थे, छोटी उम्र की बात है। तुम्हारे कुछ होगा अवश्य हिन्दी में। कट्टी करते थे न कट्टी और यह तो हमारे ऐसे-ऐसे कट्टी करते थे। इसी प्रकार जिसने पर्याय में राग के प्रति प्रेम किया, उसने स्वभाव के प्रति क्या किया है तुम्हारा? (कट्टी कर दी है)। आहाहा! और जिसने स्वभाव के प्रति प्रेम किया, उसका प्रेम पर्याय और राग के प्रति कट्टी कर दिया कि जाओ तुम नहीं। समझ में आया? यह तो बालपने में हम करते थे न, उसका समाधान यह आया।

इसी बात को दृष्टान्त से प्रगट करते हैं। जैसे.... पहले दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कमलिनी पत्र....** कमलिनी की बेल होती है न, उसमें पत्र होता है। रूखा-रूखा पत्र.... **कमलिनी पत्र जल में डूबा हुआ हो....** पानी में अन्दर डूबा हुआ हो, **उसका जल से स्पर्शित होनेरूप....** स्पर्शित का अर्थ तो ऐसा है (कि) इतना निमित्त-निमित्त सम्बन्ध हो गया है, बाकी तो जल... जो वह कमल फूल है, एक पर्याय दूसरी पर्याय को कभी भी स्पर्श नहीं करती। आत्मा अपने गुण और पर्याय को स्पर्श करता है (समयसार की) तीसरी

गाथा में है। (प्रत्येक वस्तु) अपना धर्म जो गुण और पर्याय (है), उसे स्पर्श करते हैं परन्तु परद्रव्य की पर्याय को कभी स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता, छूता नहीं — तीसरी गाथा। **एयत्तणिच्छयगदो समझो सव्वत्थ सुन्दरो लोए।** समझ में आया? परन्तु यहाँ तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहकर... समझ में आया? **उसका जल से स्पर्शित होनेरूप....** अर्थात् अन्दर डूबा है न, इस अपेक्षा से, अन्दर ऐसा पानी में दिखता है न, बीच में ऐसे पानी में अन्दर है — ऐसा दिखता है; पानी में है नहीं वह है तो अपने में परन्तु पानी के संयोग में कमल दिखता है तो स्पर्शित होनेरूप **अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना....** निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से वह **भूतार्थ है...** वह डूबा हुआ है, यह वर्तमान पर्यायदृष्टि से देखने में आता है, इतनी बात। है?

तथापि.... तो भी ऐसा होने पर भी, उसी समय में.... आहाहा! यह तो मन्त्र हैं। सन्तों की वाणी-दिगम्बर सन्तों की वाणी अर्थात् गजब बात है भाई! यह कोई पढ़ जाये और पढ़ जाये, इसलिए समझ में आ जाये यह बात नहीं है, अलौकिक बात है। आहाहा! कहते हैं जल में कमल डूबा हुआ देखने पर भी, उसका — कमल का स्वभाव देखने से... आहाहा! है? **जल से किंचितमात्र भी न स्पर्शित होने योग्य....** उसके रोम ऐसे होते हैं, रोम समझे? पत्र रूखे-रूखे, बारीक-बारीक रूखे, उसे पानी स्पर्श ही नहीं करता, ऊँचा करने से पानी का बिन्दु उसको स्पर्श ही नहीं किया है। उसके रोम, समझ में आते हैं? रोम कहते हैं, बारीक-बारीक बहुत कोरी, बहुत रूखी होती है। पानी से ऊँचा ऐसा करो तो पानी का एक अंश भी अन्दर नहीं आता। आहाहा! यह तो अभी दृष्टान्त है, हाँ! **तथापि जल से किंचित्मात्र भी न स्पर्शित कमलिनी पत्र के स्वभाव....** देखा? कमलिनी पत्र का स्वभाव, बेल के पत्र का स्वभाव, रूखा-रूखा, अत्यन्त कोरा — ऐसा। **स्वभाव के समीप जाने पर....** स्वभाव पर दृष्टि देने से, आहाहा। **अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना (अभूतार्थ है....)** झूठा है, जल से स्पर्शित हुआ, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध वह झूठा है। आहाहा!

इसी प्रकार.... यह तो दृष्टान्त हुआ। अब सिद्धान्त.... **अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का....** राग का और कर्म का निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से देखो तो... पर्याय में

अनादि काल से बँधा हुआ, आहाहा! **आत्मा का पुद्गल कर्मों से बँधने स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर....** पर्याय के निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से देखने पर, मानो निमित्त है वह नैमित्तिक के साथ जुड़ा हुआ है — ऐसा दिखाई देता है। समझ में आया? अथवा वह निमित्त है, वह यहाँ नैमित्तिक पर्याय के साथ जुड़ा हुआ है — ऐसा व्यवहारनय से दिखाई देता है, निश्चय से है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। अभी तो सम्यग्दर्शन के काल में कैसी चीज होती है, वह बात कहते हैं। आहाहा!

अनादिकाल से अनुभव करने पर बद्धस्पृष्ट है तो भी पुद्गल से.... **तथापि....** ऐसा होने पर भी **पुद्गल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होनेयोग्य....** राग के साथ द्रव्यस्वभाव किंचित् स्पर्शित नहीं है। आहाहा! जो द्रव्य का स्वभाव है, वह तो त्रिकाल निरावरण है और अशुद्धतारहित है और उसमें कमी नहीं है, हीनता नहीं है, कमी-हीनता (नहीं)। वह तो परिपूर्ण ज्ञायक आनन्दकन्द ध्रुव पूर्ण पड़ा है। आहाहा! यह तो थोड़ा अभ्यास चाहिए। यह तो कॉलेज है, थोड़ा अभ्यास हो तो बाद में यह समझ में आता है — ऐसी चीज है। आहाहा! पुद्गल के साथ किंचित् भी स्पर्श न होने योग्य.... राग के साथ जरा भी उसका द्रव्यस्वभाव स्पर्शित नहीं है। आहाहा! भगवान द्रव्यस्वभाव को राग के साथ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है। है?

श्रोता : यह तो त्रिकाली स्वभाव की बात है, पर्याय में तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, पर्याय में था परन्तु पर्याय में है, यह दृष्टि छोड़ दे क्योंकि वह अभूतार्थ है, कायम रहने की चीज नहीं है। उसकी दृष्टि से द्रव्यस्वभाव का अनुभव नहीं होता, पर्यायदृष्टि से आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है भाई! क्या हो? अभी तो गड़बड़-गड़बड़ चलती है। वे पण्डित और बड़े-बड़े साधु कहते हैं — बस, व्यवहार करो, व्यवहार से निश्चय हो जायेगा; राग की क्रिया करो, निश्चय हो जायेगा.... बिल्कुल झूठ मिथ्यात्व है। उसी प्रकार यह सब कृषि पण्डित, यह संसार के सेठ, वहीं के वहीं घुस गये हैं, निवृत्ति नहीं लेते हैं। आहाहा!

श्रोता : आप इनको द्रव्य का पण्डित बना दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कृषि पण्डित हैं न? आहाहा! यहाँ तो अन्दर खेती करे, कर्म

कृषे सो कृष्ण कहिये। जो राग का नाश कर दे और अपनी चीज को-खेत को सम्यग्दर्शन को खलिहान करके ***खेड़े*** उसे कृष्ण और उसको कृषि कहते हैं। आहाहा! राग के पुण्य के विकल्प की कृषि छोड़कर... ऋषभकुमारजी! अन्दर ज्ञायक चिदानन्द परमात्मा आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड.... जैसे पचास मण की बर्फ की शिला होती है, पचास मण की बर्फ की शिला मुम्बई में बहुत होती है। वैसे भगवान आनन्द और शीतलता की पूर्ण शिला अन्दर है। उसका अनुभव करने पर यह सब व्यवहार आदि पर्याय सब अभूतार्थ है। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! इसने कभी किया नहीं। अनन्त काल से नौवें ग्रैवेयक में द्रव्यलिंग धारण (करके गया)—

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥

यह पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण दुःख है, राग है, आस्रव है, दुःख है, जहर है।

श्रोता : पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह यहाँ-यहाँ वह बात तो यहाँ चलती है। ऐसा जहर का प्याला तो अनन्त बार पिया। आहाहा! महाव्रत लिये, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, नग्न दिगम्बर, जंगल में बसे। आहाहा! उससे क्या हुआ?

अभी तो ठीक, अभी तो बेचारे! व्यक्तिगत की कोई बात नहीं। यहाँ तो तत्त्व की बात है। यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! भगवान आत्मा अपने पर का किंचित् सम्बन्ध नहीं है, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भी नहीं। वह तो पर्याय के साथ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। राग का-कर्म का निमित्त का सम्बन्ध एक समय की पर्याय के साथ वह निमित्त और नैमित्तिक सम्बन्ध है। वस्तु में कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह किंचितमात्र भी स्पर्शित न होते हुए... ओहो! भगवान द्रव्यस्वभाव! अनावरण स्वभाव! आहाहा! आवरणरहित, अशुद्धतारहित, पर्यायरहित... आहाहा! ऐसा आत्मा का स्वभाव, वह अपने, पर से न होने योग्य **आत्मस्वभाव के समीप जाकर....** यह क्या कहते हैं? राग के प्रेम में आत्मस्वभाव से दूर होता है। चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का

— देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का वह भी राग और उस राग में जब प्रेम है, तब आत्मा से दूर वर्तता है। अब उस राग का प्रेम छोड़कर स्वभाव के समीप जाकर... जा अन्दर, आहाहा! ऐसी बात है भाई! है?

बँधनेयोग्य पुद्गल **किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य....** किंचित् भी स्पर्शित न होने योग्य। आहाहा! राग आदि का — दया, दान, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा, देव-गुरु का ज्ञान अथवा ग्यारह अंग का ज्ञान और पंच महाव्रत का परिणाम, इन सब भेद को किंचित् नहीं स्पर्श करता हुआ, द्रव्य... आहाहा! ऐसा मार्ग वीतरागमय, तीन लोक के नाथ, जिन्हें इन्द्र सुनने आवें — एक भवावतारी इन्द्र, शक्रेन्द्र एक भवावतारी है। बत्तीस लाख विमान का स्वामी है। शास्त्र में पाठ है एक भवावतारी। एक भवावतारी, मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है, उसकी इन्द्राणी, करोड़ों में एक इन्द्राणी ऐसी है कि वह भी एक भव करके मोक्ष जानेवाली है, वे एक भवावतारी इन्द्र-इन्द्राणियाँ और मति-श्रुत-अवधिज्ञानवाले (भी) भगवान (तीर्थंकरदेव) के समीप सुनने जाते हैं, वह बात कैसी होगी?

श्रोता : भगवान के पास जाने की महिमा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आया है, ऐसा आता है न सुनने को, सुनने को आता है या नहीं। भगवान के पास जाते हैं, अभी इन्द्र-इन्द्राणी। भगवान महाविदेह में विराजते हैं, मनुष्यक्षेत्र में, पाँच सौ धनुष की देह दो हजार हाथ ऊँची, करोड़ पूर्व की आयु, विराजते हैं (सीमन्धर भगवान) विराजते हैं वहाँ जाते हैं। आहाहा! भाई! तो वह धर्म कथा कैसी होगी? आहाहा! वे अवधिज्ञानी इन्द्र उसे सुनते हैं, चार ज्ञान के धारक गणधर, उस वाणी को सुनते हैं। आहाहा! भाई! यह कोई अलौकिक बात है। आहाहा! क्या?

श्रोता : भगवान यही बात कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भगवान यह कहते हैं। ये सन्त आडतिया होकर सर्वज्ञ का माल जगत को बतलाते हैं। आहाहा!

बद्धस्पृष्टता असत्यार्थ है.... है? आहा! आत्मस्वभाव के... आत्मस्वभाव, आहाहा! आत्म स्व-भाव, वे बद्धस्पृष्ट आदि पर्याय आत्मस्वभाव नहीं है। आत्म स्व-भाव... आहाहा! जो ज्ञायक आत्मा उसका ज्ञायकस्वभाव, आहाहा! आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव,

अकषायस्वभाव, वीतरागस्वभाव, निर्विकल्पस्वभाव, सामान्यस्वभाव, सदृशस्वभाव एकरूप रहनेवाला स्वभाव... आहाहा! ऐसे आत्मस्वभाव के... जो आत्मा जैसा नित्य है — ऐसा उसका स्वभाव भी नित्य कायम है। आहाहा! जैसे, द्रव्य नित्य है तो उसका स्वभाव भी नित्य है। आहाहा!

आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर.... आहाहा! पूर्ण आनन्द प्रभु के समीप जाकर, राग से हटकर, पर्यायबुद्धि छोड़कर, द्रव्यबुद्धि में समीप जाकर... आहाहा! भगवान को साक्षात् करने को साथ — समीप जाकर अनुभव करने पर वह बन्ध और राग आदि सम्बन्ध वह सब झूठा है, अभूतार्थ है। है अवश्य, हाँ! यह तो अपेक्षा से झूठा कहा। पर्याय नहीं — ऐसा नहीं परन्तु पर्याय त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से अभूतार्थ कही गयी है। पर्याय नहीं है — ऐसा माने तब तो वेदान्त हो जाता है। समझ में आया?

परन्तु यहाँ पर्याय का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली को (लक्ष्य में) लेकर पर्याय को अभूतार्थ कहा गया है। है तो पर्याय है और राग का सम्बन्ध भी पर्यायदृष्टि से है परन्तु अनुभव — स्वभाव के समीप जाना है, तब उसको छोड़कर.... आहाहा! ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द का दल, शुद्धचैतन्यघन द्रव्यस्वभाव (है)। पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि में समीप जाकर... आहाहा! देखो, यह सम्यग्दर्शन! आहाहा! उस आत्मस्वभाव के समीप जाकर... राग के प्रेम में और पर्याय के प्रेम में तो पर्यायमूढ़ जीव, आत्मस्वभाव से दूर था। आहाहा! और उस पर्याय का अंश है, वह भी बुद्धि छोड़कर... 'पर्यायमूढा परसमया' कहा है। प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार ९३ गाथा पहली — 'पर्यायमूढा परसमया' — तो एक समय की पर्याय में भी जिसको रुचि है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह बुद्धि छोड़कर सम्यग्दर्शन पाना हो तो... सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन, तो सत्य जो पूर्णानन्द प्रभु सत्य है, उसकी प्रतीति और अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! काम बहुत कठिन है, बापू! भाई! जन्म-मरणरहित होने की चीज कोई अलौकिक है। आहाहा! गोदिकाजी!

श्रोता : सम्यग्दर्शन की क्या रीति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विधि है। पैसा-वैसा इकट्ठा करके अमुक के लिये दान में

देना (उससे) कुछ धर्म होता है — ऐसा कुछ नहीं है। महीने में पाँच लाख कमाये और कहे दो लाख दो। इतने अधिक तो न दे परन्तु लाख-दो लाख दे तो यह तो ऐरण की चोरी और सुई का दान (जैसी बात है)।

श्रोता : नहीं देने की अपेक्षा तो ठीक है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह, नहीं, ठीक-बिक बिल्कुल नहीं।

श्रोता : चोरी कहाँ है, कमाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कमाया? यह राग चोरी है। राग को अपना मानना, वह चोर है। मोक्ष अधिकार में आता है — चोर है, गुनहगार है। राग-शुभराग वह मेरा, वह तो चोर है। अपनी चीज नहीं, उसे अपनी मानना वह चोर है। आहाहा! मोक्ष अधिकार में लिया है... अपराधी है। आहाहा! शुभराग वह जहर है, विषकुम्भ है — ऐसा लिया है। मोक्ष अधिकार.... शुभराग — देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, पंच महाव्रत का राग विषकुम्भ है, जहर का घड़ा है। क्यों? यह भगवान अमृत के सागर से विरुद्धभाव है। आहाहा!

अरे! परम सत्य बात सुनने को मिले नहीं, वह कहाँ सत्य की ओर जायेगा? समझ में आया? देह का नाश तो एक समय में होगा। आहाहा! लो, वे शोभालाल है न, उनकी तबियत बहुत नरम है, अब वे तो कितने करोड़ाधिपति हैं। शोभालाल भगवानदास! सीरियस हैं — ऐसा कल कहते थे भाई! हमारे ऋषभकुमारजी (कहते थे)। ऐसी स्थिति तो देह की है। बापू! वह राग जहाँ नाशवान है तो फिर शरीर की बात तो क्या करना? आहाहा! अरे! परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है, क्योंकि एक समय रहती है। आहाहा! केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञानी को (नय) नहीं, नीचे साधक जीव को... अंश है न? वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है तो व्यवहार है, वह अभूतार्थ है। आहाहा! मार्ग बहुत (अलौकिक) बापू! परन्तु अभूतार्थ का अर्थ ऐसा नहीं कि वह पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है। परन्तु त्रिकाल का आश्रय लेने की अपेक्षा से एक समय की चीज को अभूतार्थ नाशवान कहा है परन्तु नाशवान कहा है, इसलिए वह पर्याय है ही नहीं — ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यह कहते हैं, देखो! **आत्मस्वभाव के समीप....** समीप, समीप... आहाहा! जो पर्याय का प्रेम है, राग का प्रेम है, वह अभूतार्थ है। उसे लक्ष्य में से छोड़ दे और भगवान त्रिकाली स्वभाव पड़ा है, उसके समीप जा; जो दूर था उसके समीप जा। आहाहा!

श्रोता : कितना मील चलना पड़ेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में गति बदलना पड़ेगी। कितना मील ऐसा कि चलना पड़े? एक समय में गति बदलना पड़ेगा, कहा। वह आता है न? प्रज्ञाछैनी 'रभसात्' प्रज्ञाछैनी में ऐसा कि... एक समय में आता है। प्रज्ञाछैनी! १८१ कलश, है? यह है ही न? समयसार है। यह तो १८१ है, देखो! कितने कलश में है? १८१ कलश है।

यह तो हिन्दी, हिन्दी है, हाँ! ४१४ पृष्ठ आया, यहाँ आया ४१४ देखो, क्या कहते हैं? '**रभसात्**' है, देखो '**रभसात्**' शीघ्र — कलश टीका में एक समय लिया है, '**रभसात्**', है? **आत्म-कर्म-उभयस्य सूक्ष्मे अन्तःसन्धिबन्धे** 'रभसात्' पड़ती है, एक समय में पड़ती है, एक समय! यहाँ तो अभी शीघ्र लिया, कलश टीका में एक समय लिया है। समझ में आया? यह कलश टीका है न? यह 'रभसात्' देखो।

'**रभसात्**' अति सूक्ष्मकाल में — एक समय में पड़ती है। क्या कहा यह? कि राग और पर्यायबुद्धि छोड़कर स्वभाव सन्मुख में जाना, उसमें एक समय लगता है। आहाहा! फिर ख्याल में भले असंख्य समय में आता है इसे, परन्तु भेद पड़ जाता है और स्वभाव की दृष्टि होती है तो एक समय में समयान्तर हो जाता है। आहाहा। 'रभसात्' लिया है, एक समय, बस! आहाहा! जैसे एक समय में भेद आदि और पर्याय आदि है तो उसे छोड़कर द्रव्य के समीप जाना, एक समय में जाना है। आहाहा! क्या कहा? एक समय की पर्याय की रुचि छोड़कर, एक समय में द्रव्य के समीप जाना पड़ता है। आहाहा! सूक्ष्म है भाई! सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का विषय कोई अलौकिक चीज है।

अभी तो सारी बात (ऐसी चलती है कि) दया करो और यह करो, प्रतिमा ले लो... धूल में है नहीं तेरी प्रतिमा, ग्यारह ले लो... अब रामजीभाई तो कहते हैं उन्नीस प्रतिमा हैं तो उन्नीस ले लेना, उसमें क्या वस्तु है।

श्रोता : जितनी सत्य लगे उतनी ले ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह ले ली न, दो ले ली न... धूल भी नहीं! अभी एक व्यक्ति कहता था। वह नहीं वह कहता था? गुणधरलाल, गुणधरलाल कहता है कि मुझको प्रतिमा तो दी परन्तु मेरे पास तो आयी नहीं, कहते हैं। लो, प्रतिमा कहे — ऐसा चला था। व्रत, सबको व्रत देने लगे, सभा में आवे इसलिए तो (व्रत देने लगे) ओहोहो! सो, वह तो यहाँ आनेवाला था और गुजर गया। वह कहता है प्रतिमा मुझे दी थी परन्तु मेरे पास आयी नहीं, क्योंकि प्रतिमा तो किसे कहते हैं प्रभु? आहाहा! इस राग से भिन्न होकर आत्मा का एक समय में अनुभव हो और बाद में स्वरूप की स्थिरता का अंश बढ़ जाये — स्वरूप के आश्रय की स्थिरता का अंश बढ़ जाये, उसे प्रतिमा का विकल्प आता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

और जिसे स्थिरता इससे भी बढ़ जाये उसे महाव्रत का विकल्प आता है, वह भी दुःखरूप और राग है। आहाहा! अरे! यहाँ तो अभी एकदम प्रतिमा ली है। ऐसा लिया और ऐसा लिया और ऐसे पाँच में से सात ली और सात में से ग्यारह ली.... कहता था न? यहाँ कहता था एक व्यक्ति यहाँ, यहाँ कहता था एक व्यक्ति के आठ प्रतिमा तो है मेरे पास भी कोई भाव नहीं पूछते तो ग्यारह प्रतिमा लेना पड़ेगा कि लोग पूछे तो सही कि महाराज पधारो! पधारो! पधारो! आहार लो। यहाँ आया था एक व्यक्ति आठ प्रतिमावाला, परन्तु आठ प्रतिमा... हम क्षुल्लक नहीं, लंगोटी नहीं — ऐसा नहीं देखे न तो आहार लेने-देने को नहीं आते। अतः प्रतिमा लेते हैं तो आते हैं (कि) पधारो, पधारो गुरुजी पधारो! इसलिए ग्यारह प्रतिमा लेनी पड़ेगी (— ऐसा) कहता था। अर...र! अरे...रे! प्रभु! क्या करता है भाई! बापू! प्रतिमा कहीं ऐसे आती है, वह तो जब स्वरूप की स्थिरता जमती है... सम्यग्दर्शन होने के बाद शान्ति की स्थिरता आंशिक बढ़ती है, उसको प्रतिमा का विकल्प आता है। आहाहा! ऐसा का ऐसा ले ले...?

यहाँ तो जवाब यह आया (कि) राग को और पर्याय को भी स्पर्श नहीं करता — ऐसा आत्मस्वभाव, आहाहा! भगवान, अमृतसागर से भरा प्रभु, ध्रुव आत्मस्वभाव अणीन्द्रिय ज्ञान, अणीन्द्रिय आनन्द, अणीन्द्रिय प्रभुता, अणीन्द्रिय स्वच्छता — ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाने पर, पर्याय की बुद्धि छोड़कर त्रिकाल भगवान के स्वभाव के समीप जाकर...

आहाहा! **अनुभव करने पर....** उस आत्मा का अनुभव करने पर बद्धस्पृष्ट झूठा है, पर्याय, पर्याय वह त्रिकाली में नहीं है। समझ में आया?

अनुभव है वह पर्याय है; सम्यग्दर्शन है वह पर्याय है परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! परन्तु उस द्रव्य के समीप जाकर अनुभव करने पर (वैसी) पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय भी है परन्तु वह राग का सम्बन्ध आदि है, इसलिए उसको अभूतार्थ कह दिया और यहाँ तो अपने पहले आ गया है। चौदह के अर्थ में कि आत्मा वस्तु जो शुद्धचैतन्यघन.... भाई! यह बात नहीं बापू! यह शब्द सरल है। आहाहा! यह पूर्णानन्द का नाथ प्रभु परमात्मस्वरूप विराजमान आत्मा है, उस पर दृष्टि लगाना। आहाहा! वह दृष्टि है तो पर्याय, सम्यग्दर्शन भी है तो पर्याय, परन्तु पर्याय की दृष्टि ध्रुव पर लगाने से सम्यग्दर्शन होता है — ऐसा बोध है, भाई! आहाहा! है?

श्रोता : ध्रुव पर (दृष्टि) किस प्रकार लगाना?

समाधान : लगाना, कहते हैं मुँह फिराना ऐसा। वह किस प्रकार? मुँह फिराना, ऐसा मुँह और कर दे ऐसा। कैसे बदलना? परन्तु बदल दे। चन्दूभाई! इस पर्याय का लक्ष्य राग और पर्याय पर है तो पर्याय का आश्रय ऐसा बना दे। उस समय की पर्याय तो परसन्मुख है परन्तु द्रव्य में से लक्ष्य होकर नयी पर्याय सम्यग्दर्शन की हुई, यह पर्याय उस तरफ, (द्रव्यसन्मुख) झुकने से हुई — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! उस समय द्रव्य में से सम्यग्दर्शन होता है, द्रव्य के आश्रय से (सम्यग्दर्शन होता है), तब वही पर्याय द्रव्यसन्मुख हुई — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! बहुत कठिन बात भाई! यह सम्यग्दर्शन का अधिकार है, यह १४ वीं गाथा!

वह सम्यग्ज्ञान का बाद में आयेगा, चारित्र का तो पीछे कहीं.... सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान भी सच्चा नहीं; सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र वह सब बालव्रत और बालतप है। आहाहा!

श्रोता : गुरुदेव, पर्याय को बदलना, परसन्मुख है, उसे स्वसन्मुख करना, पर्याय को, वह किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को स्वसन्मुख करने का अर्थ ? स्वसन्मुख, वह तो कहा न ? जो पर्याय परसन्मुख है, वह तो हो गयी वहाँ....

श्रोता : लक्ष्य को स्वसन्मुख करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, वह नयी पर्याय उत्पन्न करके स्वसन्मुख करना — ऐसा कहा जाता है।

श्रोता : करना वह तो मरना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। राग को करना वह मरना है; स्वसन्मुख करना, वह तो जीना (जीवन) है।

श्रोता : सम्यग्दर्शन की पर्याय को करना अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, इस करना का अर्थ वह होता है। त्रिकाल (द्रव्य के) समीप जाने पर सम्यग्दर्शन की पर्याय होती है, तथापि उसका लक्ष्य पर्याय के ऊपर नहीं है — ऐसा है प्रभु! क्या हो ? अरे! मार्ग की विधि का ही पता न हो, वह मार्ग में किस प्रकार जा सकेगा ? आहाहा!

यहाँ वह कहा — बद्धस्पृष्ट की तरफ देखो तो व्यवहार पर्याय है, राग है, निमित्त -निमित्त सम्बन्ध है, परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो तो वह बात अभूतार्थ — झूठ है। झूठ अर्थात् ? पर्याय नहीं है — ऐसा नहीं है, परन्तु उसे गौण करके झूठ कहा है। आहाहा! और मुख्य करके भूतार्थ को सत्य कहा है। आहाहा! यह तो ग्यारहवीं गाथा में आया न ? त्रिकाली को मुख्य करके निश्चय कहा और पर्याय को गौण करके, व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा।

इसमें कितनी बातें पहुँचना ? नहीं तो पर्याय तो इसकी है, वह निश्चय है; गुण इसका है, वह निश्चय है; द्रव्य इसका है, वह निश्चय है; स्व, वह निश्चय; पर व्यवहार परन्तु यहाँ त्रिकाली ज्ञायक को भूतार्थ कहकर, मुख्य कहकर निश्चय कहा और पर्याय उसमें है, तथापि उसे गौण करके, व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा। आहाहा! अब ऐसा ज्ञान मिलता नहीं न! ऐसी बात है बापू!

श्रोता : हमने तो प्रवचन में यह सुना था महाराज! कि पर्याय का करना भी नहीं है, पर्याय का होना भी नहीं है — ऐसा सुना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना-बरना नहीं है, यहाँ तो पर्याय होती है — ऐसा कहा न? द्रव्य के लक्ष्य से होती है — ऐसा कहा। आहाहा!

श्रोता : करना नहीं, होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव सन्मुख होते हैं तो पर्याय / सम्यग्दर्शन होता है, बस! सम्यग्दर्शन की पर्याय के प्रति सम्यग्दर्शन का लक्ष्य नहीं है। क्या कहा? सम्यग्दर्शन की पर्याय के ऊपर सम्यग्दर्शन का लक्ष्य नहीं है; सम्यग्दर्शन की पर्याय का लक्ष्य ध्रुव के ऊपर है। अरे...रे! ऐसी बात है मूल... अभी बहुत गड़बड़ हो गयी है।

श्रोता : बहुत गड़बड़ निकल गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह कहा लो, एक बोल हुआ यह। पाँच में से... पाँच बोल हैं न, अबद्धस्पृष्ट.... अबद्धस्पृष्ट की एक की व्याख्या की, समझ में आया? **दूसरा,**

जैसे मिट्टी का ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व (भूतार्थ है-सत्यार्थ है।....) पर्याय में अन्य-अन्यपना सत्य है... मिट्टी में से जो घड़ा होता है, झारी होती है, अन्य-अन्य, अन्य है। **तथापि सर्वथा अस्खलित....** मिट्टी स्खलित होकर पर्याय में नहीं आती। आहाहा! सामानय मिट्टी है वह **सर्व पर्याय भेदों से किंचित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले....** सामान्य मिट्टी है, वह पर्याय में स्खलित होकर आती है? आती ही नहीं कभी। आहाहा! यह झारी और घड़ा आदि होता है, उसमें मिट्टी नहीं आती, वह तो पर्याय है, पर्याय में सामान्य नहीं आता। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! परन्तु **एक मिट्टी के स्वभाव के किंचित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाला....** सर्व पर्याय भेदों से भिन्न और एक मिट्टी के स्वभाव, देखो! मिट्टी का स्वभाव एकरूप-सामान्यरूप रहना है, (उसके) समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व झूठा है। अन्य-अन्य मिट्टी की अवस्थाएँ वे झूठी हैं।

इसी प्रकार आत्मा में उतारेंगे....! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)